इस्लाम में पर्दे का तसव्वुर

इस्लाम में पर्दे का तसव्वुर

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द

आज यूरोप वाले दावेदार हैं कि उन्होंने ख़वातीन को घरों की क़ैदोबन्द से आज़ादी दिलाई और उनके हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त की, लेकिन अगर हम यूरोप की तारीख़ का मुताला करें तो हम पर इस दावे की हक़ीक़त खुल जायेगी। दरहक़ीक़त जिस वक़्त यूरोप में तेज़ी से Industrilisation होने लगा और कसरत से कारख़ाने खुलने लगे तो मज़दूरों की मज़दूरी में इज़ाफ़ा होने लगा और मज़दूरों ने तनख़्वाहों में इज़ाफ़े के लिए हड़तालें शुरु कर दीं। ऐसे वक़्त में कारख़ाना मालिकों और सरमायादारों ने नक़ली रिफ़ारमर्स के ज़रिये औरतों की आज़ादी का नारा बलन्द कर दिया और ज़ोरशोर से मुतालबा शुरु हुआ कि औरतों को भी मर्दों के शाना बशाना काम करने का मौक़ा मिलना चाहिए और घरों में उनको क़ैद करके मर्द उन पर ज़ुल्म कर रहे हैं, इस तरह से औरतों को कारख़ानों में लाया गया और मर्दों से आधी मज़दूरी पर उन्हें काम पर रखा गया। औरतों की आज़ादी का नारा महज़ एक धोका था और मक़सद सिर्फ़ कारख़ानों में उनका इस्तेहसाल था।

गुज़िश्ता मज़मून में, मैंने क़ुरआन मजीद की पर्दे से मुताल्लिक़ एक आयते करीमा का तज़किरा किया था। आज दूसरी आयत पेश कर रहा हूँ। सूर-ए-अहज़ाब आयत 59 ''ऐ नबी[स०] तुम अपनी अज़्वाज, अपनी बेटियों और अहले ईमान की औरतों से कह दो कि वह अपनी चादरों को अपने ऊपर ओढ़ लिया करें, इससे उनकी शनाख़्त हो जायेगी और वह अज़िय्यत से बच जायेंगी। इस आयते करीमा के नुज़ूल का सबब ये है कि पर्दे का हुक्म आने से क़ब्ल मिस्ल ज़मान-ए-जाहिलियत के, तमाम औरतें ख़्वाह किसी की बहू या बेटियाँ हों या कनीज़ें और पस्त किरदार औरतें, सब एक तरह से मुँह खोल कर निकला करती थीं। आवारा और बदमाश लोगों की ये आदत थी कि वह कनीज़ों और पस्त औरतों को छेड़ते थे और उनसे फ़हश मज़ाक़ करते थे, इसी में कभी-कभी आली मरतबत और शरीफ़ ख़वातीन भी उनका शिकार बन जाती थीं। लोगों ने इस बात की शिकायत रसूलुल्लाह[स०] से की। उस वक़्त ये आयत नाज़िल हुई कि तुम्हारी औरतें चादरों को अपने ऊपर ओढ़ लिया करें। इस तरह से शरीफ़ और मोहतरम औरतों का तर्ज़े लिबास कनीज़ों और ख़राब क़िस्म की औरतों से मुमताज़ हो जायेगा और वह औबाशों की अज़ियत से बच जयेंगी। मैं हरगिज़ ये नहीं कहता कि सारी औरतें पस्त होती हैं, मगर इतना ज़रूर कहूँगा कि उन्होंने शराफ़त और इज़्ज़त की वह निशानी छोड़ दी जिसकी क़ुरआन ने ताकीद की है, लेहाज़ा अगर ग़ैर मुहज़्ज़ब लोग उनसे गुस्ताख़ी करें तो ये भी इतनी ही क़ुसूरवार हैं जितने कि वह औबाश लोग।

पर्दे के मुख़ालिफ़ ज़ोर शोर से प्रोपगण्डा करते हैं कि पर्दा औरत की तौहीन है और क्योंकि इस्लाम ने औरत को कमतर समझा है, इसलिए उसे पर्दे में रखने का हुक्म दिया है। अगर ये बात सही होती है तो जो इस्लाम की इन्तिहाई बाअज़मत ख़वातीन हैं जिनको उम्मत की माँएं कहा गया है, जो अज़्वाजे रसूल[स०] हैं, वह पर्दे की क़ैद से आज़ाद होतीं, मगर हम ये देखते हैं कि उनके लिए पर्दे का हुक्म ज़्यादा सख़्त है। ''ऐ अज़्वाजे नबी[स०] तुम अपने घरों में रहा करो'' मुसलमानों से

ताकीद है कि जब तुम रसूले अकरम[स०] की बीवियों से कुछ माँगो तो पर्दे की आड़ से सवाल करो। आप इंसाफ़ की नज़र से पर्दे का एहतेमाम मुलाहेज़ा फ़रमाएं। पहले चादरें ओढ़ने का हुक्म हुआ। फिर नक़ाब डालने का हुक्म हुआ, फिर घर में बैठने का हुक्म हुआ, फिर मुसलमानों को हुक्म कि इसके बाद अगर कुछ माँगो तो पर्दे की आड़ से। अगर पर्दा सबबे तौहीन होता तो जिन ख़वातीन की अज़मत इतनी थी कि वह उम्मत की माँए क़रार दी जा रही हैं, उन पर पर्दे की इतनी पाबन्दी न होती। इससे साबित होता है कि पर्दा औरत की तौहीन के लिए नहीं ताज़ीम के लिए है।

मर्दों से मेलजोल कैसा, मर्दों की महफिलों में जाना कैसा, मर्दों के शाना बशाना काम करना कैसा? रसूलुल्लाह[स०] का इरशाद है, (तर्जुमा) "जो शख़्स अल्लाह पर और यौमे क़यामत पर ईमान रखता है, वह कभी ऐसे मक़ाम पर नहीं सोयेगा, जहाँ उसकी साँस की आवाज़ नामहरम औरत के कानों तक जाए। हज़रत अली[अ०] का इरशाद है: "ऐ कूफ़ा के मर्दो! तुम्हारी ग़ैरत को क्या हो गया है कि तुम्हारी औरतें बाज़ारों में इस तरह चलती हैं कि नामहरमों से उनके शाने मस होते रहते हैं।" हज़रत अली[अ०] ने औरतों से ख़िताब नहीं किया है, बल्कि मर्दों की ग़ैरत को ललकारा है। यानी अगर औरतें बाज़ारों में आयें तो मर्दों की ग़ैरत पर सवालिया निशान लग जायेगा।

इस्लाम ने औरतों को पर्दे में रख कर उनकी इज़्ज़त और वक़ार को मेराज बख़्शी है। इस्लाम का पैग़ाम है कि औरतें माहताबे इफ़्फ़त हैं, उनको आफ़ताब की रौशनी में लाकर बेनूर न बनाओ, वह आफ़ताबे इस्मत हैं उनको ऐसे रास्तों पर न चलाओ कि उन्हें गहन लग जाए। वह बेनज़ीर फूल हैं इनको नक़ाबों में रखकर हवसनाक निगाहों की गर्मी से बचाओ ताकि वह कुमहला न जाएं। वह बेनज़ीर जवाहरात हैं, उनको घर के ख़ज़ानों में हिफ़ाज़त से रखो। औरतों के वास्ते ज़ीनत है पर्दा। अगर ऐसा न होता तो कुरआन हूरों की मदह (तारीफ़) पर्दे से न करता। जन्नत वह मक़ाम है जहाँ न आवारगी है और न बद निगाही। सर्दी नहीं कि फूल सूखें, गर्मी नहीं कि कलियाँ मुरझाएं तो फिर हूरों के वास्ते पर्दे की क्या ज़रूरत है? मगर मालूम होता है कि हुस्न का जौहर है कि नक़ाब में हो और मोती की हिफ़ाज़त इसी में है कि सदफ़ में हो और मोती की आबो ताब इसी में है कि चादरे आब में हो लेहाज़ा हूरों का तज़किरा करते हुए इरशाद होता है: "जन्नत में वह पाकदामन हूरें हैं जो किसी तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखतीं और वह हूरें जिनकी ज़ौजा होंगी, उनसे पहले न किसी जिन ने उन्हें हाथ लगाया होगा न किसी इन्सान ने।"

अगर मर्दों की बज़्म में जाना, उनसे हाथ मिलाना और उनकी तरफ़ निगाहें उठाना ऐब न होता तो अल्लाह कभी हूरों की इस तरह मदह न करता कि न किसी की तरफ देखती हैं, न किसी का हाथ उनसे मस हुआ है बेहतर था कि ख़ुदा यूँ तारीफ़ फ़रमाता कि बड़ी पढ़ी लिखी हैं, बड़ी अच्छी मुक़र्रिर हैं, कई किताबों की मुसन्निफ़ा हैं। कोई बज़्म ऐसी नहीं जिसकी सदर न हों। दुनिया जिन बातों को औरत का हुस्न जानती है, उनका कोई ज़िक्र नहीं, बल्कि उनके शर्मो हया और पर्दे का तज़किरा "ये हूरें पर्दे के अन्दर रहती हैं" तो अब समझिये कि जब जन्नत जैसे पाक व पाकीज़ा माहौल में हूरों का ज़ेवर पर्दा है तो ये दुनिया जहाँ क़दम-क़दम पर बदकारों का ख़ौफ है, बदनिगाहों का डर है, वहाँ पर पर्दा कितना ज़रूरी क़रार पायेगा।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा उर्दू 12 मार्च 2010[ई०])

ख़वातीन रिज़र्वेशन बिल– चन्द मारूज़ात

ख़वातीन रिज़र्वेशन बिल आज हर तरफ़ मौज़ूए गुफ़्तगू बना हुआ है। मुझ से भी इस मौज़ू पर कुछ मीडिया वालों ने सवालात किये थे, जिनके मैंने बहुत तफ़सीली जवाब दिये, लेकिन अफ़सोस की बात है कि मेरे पूरे बयान को नश्र किये बग़ैर दरमियान से सिर्फ़ एक सवाल के जवाब को नश्र किया गया और इसके माने भी ख़ुद ही मुतअय्यन कर लिये गये, जो हरगिज़ मेरा मक़सूद न थे। सवाल की नौअियत ऐसी थी कि हर मुसलमान का जवाब, जिसको थोड़ी सी भी कुरआनी अहकाम और अहादीसे शरीफ़ा की मालूमात है, यही होता। पूछने वाले ने बराहे रास्त पर्दे के इस्लामी हुक्म

पर हमला किया और ऐसी शख़सियतों की मिसालें दी थीं कि जिनका नामो नमूद और दुनियावी शोहरत व तरक़्क़ी पर्दा तर्क किये बग़ैर और नीम बरहना लिबास पहने बग़ैर मुमकिन न थी, जिसका जवाब देते हुए मैंने कहा था कि ख़ालिस दुनियावी नुक़्त-ए-निगाह से तो आपकी बात सही है कि पर्दा तर्क किये बग़ैर आपके बयान करदा ख़्वातीन उन बलन्दियों तक नहीं पहुँच सकी थीं, लेकिन दीनी नुक़्त-ए-नज़र से (और मैं समझता हूँ कि हर मज़हब इसकी ताईद करेगा) आपकी मन्ज़ूरे नज़र ख़्वातीन आइडियल क़रार नहीं पाती हैं, बल्कि इस्लाम में बेहतरीन औरत वह है जो बेहतरीन माँ हो, बेहतरीन बीवी, बेहतरीन बेटी और बहन हो। बेहतरीन लीडर बनना एक औरत के अव्वलीन फ़राएज़ में दाख़िल नहीं है, बल्कि बलन्द पाया लीडर दुनिया के सामने पेश करना उसका फ़रीज़-ए-अव्वलीन है। हज़रत ईसा[अ०] बग़ैर बाप के तो आ गये, मगर बग़ैर माँ के नहीं आए। औरत खुद नबी नहीं, मगर अम्बिया को अपनी आग़ोश में परवरिश देने वाली ज़रूर है। एक ख़ातून खुद इमाम नहीं, मगर इमामों की माँ ज़रूर है। अगर रहबरी करना ख़्वातीन के अव्वलीन फ़र्ज़ में दाख़िल होता तो एक लाख चौबीस हज़ार अम्बिया में कोई नबिय्या ज़रूर होती। मेरे नाम से कुछ चैनल्स पर ये पट्टी चलाई गई ''औरत बच्चा पैदा करने की मशीनः कल्बे जवाद'' कहाँ एक बेजान मशीन कहाँ माँ। एक औरत माँ बनने के बाद अल्लाह तआला के कई सिफ़ात की मज़हर बन जाती है। राज़िक़ अल्लाह है, यह वसील-ए-रिज़्क़ बनती है। रब वह है बच्चे को तरबियत ये दे रही है। रहमान व रहीम वह है उसकी रहमत का मज़हर माँ है। जवाद व करीम वह है उसका जूदो करम माँ में ज़ाहिर होता है। मुतकल्लिम अल्लाह है, मगर बच्चे को बोलना सिखाने वाली माँ है। क़ुरआने मजीद में माँ-बाप दोनों का एहतेराम वाजिब क़रार दिया गया है, मगर जहाँ औलाद के लिए ज़हमतें उठाने का तज़किरा है वहाँ सिर्फ़ माँ का नाम है। बाप का नहीं।

औरत का दूसरा बुनियादी फ़रीज़ा बीवी की हैसियत से है, इस बात के लिए बेशुमार अहादीसे रसूलुल्लाह[स०] और मलफ़ूज़ाते आले रसूल[अ०] मेरी पुश्तपनाह हैं। बाहर निकलने वाली अक्सर ख़्वातीन का बेशतर वक़्त फैशन करने और घर आकर उसके उतारने में सर्फ़ होता है। किसी रिसाले में एक शौहर की शिकायत शाया हुई थी उसका खुलासा दर्ज हैः

''मेरी बीवी सोने के मौक़े पर अपने आपको मुकम्मल जोकर बना लेती है। वह एक बड़ी सी जालीदार टोपी अपने सर पर बाँधती है, ताकि सोते वक़्त उसके बाल ख़राब न हों, इसके बाद वह सोने का लिबास ज़ेबतन करती है, फिर सिंगारमेज़ पर बैठ कर अपना मेकअप उतारती है। अपने मुँह की क्रीम ख़ास मवाद से धोती है। जब वह पलटकर देखती है तो ऐसा महसूस होता है कोई और औरत सामने आ गई। उसकी भंवें तरशी हुई हैं और जब वह चेहरा साफ़ करती है तो भंवें भी साफ़ हो जाती हैं। उसके चेहरे की नागवार बू मेरे दिमाग़ तक पहुँचती है, क्योंकि खाल को झुर्रियों से बचाने के लिए वह जो क्रीम इस्तेमाल करती है, उससे उठने वाली काफ़ूर की बू मुझे क़ब्रिस्तान की याद दिलाती है। इसके बाद नौकरों को आवाज़ देकर चार खद्दर की सफेद थैलियाँ मंगवाती है, वह पलंग पर लेट जाती है और नौकर चारो थैलियाँ उसके हाथों और पैरों पर चढ़ा देते हैं ताकि सोने में हाथों और पैरों के नाखुन न टूट जाएं और इस तरह आख़िरकार वह सो जाती है।''

ये है आज की (मार्डन) तरक़्क़ीयाफ़्ता बीवी जो बीवी के अलावा सब कुछ है। इसलिए जब पर्दे की बात आती है और शर्मो हया की गुफ़्तगू होती है तो इस क़िस्म की औरतें चिराग़ पा हो जाती हैं।

मसअला ये है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जो नाम के मुसलमान तो रहना चाहते हैं, मगर इस्लामी क़वानीन पर चलना पसन्द नहीं करते, बल्कि चाहते हैं कि इस्लाम को अपनी मर्ज़ी पर चलाएं। खुद ज़मान-ए-रिसालत[स०] में भी ऐसे वाक़िआत मिलते हैं। कुछ सरदाराने क़बाएल रसूलुल्लाह[स०] की ख़िदमत में आये कि हम मुलसमान होना चाहते हैं। इब्तेदाए इस्लाम में एक-एक आदमी की अहमियत थी और सरदारे क़बीला के मुसलमान होने

का मतलब था कि पूरा क़बीला मुसलमान हो जाए, मगर शर्तें पेश कीं कि जब हम आएं तो गुलामों और ग़रीबों को उठा दिया जाए। बाज़ ने शर्त लगाई हमें उनसे मुमताज़ जगह दी जाए। यहूदियों की शर्त थी शराब और सूद के हमारे कारोबार में इस्लाम न बोले। रसूलुल्लाह[स०] ने किसी की कोई शर्त कुबूल नहीं फरमाई। फ़रमाया कि तुम्हारी मर्ज़ी नहीं चलेगी, बल्कि अल्लाह की मर्ज़ी चलेगी। मैं शर्तें मानने नहीं अपनी शर्तें मनवाने आया हूँ। चाहे इस्लाम माने चाहे न मानो। जब मानो तो समझकर और जब अल्लाह और रसूल[स०] पर यक़ीन आ जाए तो हर हुक्म पर आँख बन्द करके मानो। अबूजहल, अबूलहब, उक़बा, शैबा, वलीद वग़ैरा सब हक़ को पहचानते थे बेवक़ूफ़ न थे। सच्चाई जानते थे, मगर चाहते थे कि इस्लाम लाएं तो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़। मैं तो समझता हूँ कि ये काफिर सरदाराने कुरैश आज के नक़ली मुसलमानों से बेहतर थे कि कम अज़ कम उन लोगों ने पैग़म्बर[स०] को धोका न दिया। पहले से बता दिया कि मुसलमान बनेंगे तो अपनी शर्तों पर, मगर ये आज के नक़ली मुसलमान कहते तो अपने को मुसलमान हैं मगर चलते हैं अपनी मर्ज़ी पर और अगर इन्हें कोई सही इस्लाम की तलक़ीन करे तो उसे कठमुल्ला और चौदह सौ साल पहले की दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने वाला कहते हैं। दरअसल इनमें से कुछ तो वह है, जिन्हें ये कहने की हिम्मत नहीं कि हम इस्लाम को नहीं मानते हैं और कुछ वह हैं जो सिर्फ़ इस्लाम का मुखौटा लगाए हुए हैं ताकि हुकूमतों या सियासी जमाअतों में कोई ओहदा मिल जाए, क्योंकि हुकूमतों या सियासी पार्टियों को ऐसे नक़ली मुसलमानों की तलाश रहती है ताकि उन्हीं के ज़रिये ईस्लाम और मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाएं।

ये मौज़ू ऐसा है कि इस पर जितना भी लिखा जाए कम है। इस्लाम ने ख़वातीन को जो ग़ैर मामूली हुक़ूक़ दिये हैं इन्शाअल्लाह उन पर गुफ़्तगू बाद में होगी। फिलहाल गुफ़्तगू ख़वातीन रिज़र्वेशन बिल के बारे में है कि जिसके मुताल्लिक़ कुछ अच्छे पहलू पाये जाते हैं, वहाँ इसकी एक बहुत बड़ी ख़राबी ये सामने आती है कि बाज़ औक़ात इन्तिहाई क़ाबिल और लायक़ लोग रह जाते हैं और इन्तिहाई नाकारा और नालायक़ लोग रिज़र्वेशन का फ़ायदा उठा लेते हैं। रिज़र्वेशन दस्तूरे हिन्द की रूह के ख़िलाफ़ है, जहाँ कई जगह तहरीर है कि मज़हब, ज़ात-पात वग़ैरा किसी भी बुनियाद पर इम्तियाज़ नहीं बरता जायेगा। एक बात बहुत ज़ोर शोर से कही जा रही है क्योंकि औरतों को उनका हक़ नहीं मिलता है, इसलिए रिज़र्वेशन ज़रूरी है तो सवाल ये है कि गुज़श्ता हर इलेक्शन में 33 फ़ीसद से ज़ायद ख़वातीन खड़ी होती हैं तो खुद औरतों ने मर्दों के बजाए उनको वोट देकर मुन्तख़ब क्यों नहीं किया? इसका मतलब है औरतें मर्दों को रहबरी के लायक़ समझती हैं। फिर सवाल ये है कि आज इलेक्शन इतने महंगे हैं कि एम०पी० के इलेक्शन में करोड़ों ख़र्च होते हैं। इसलिए वह ख़वातीन जो या तो खुद करोड़पति हैं या उनके शौहर, वही पार्लियामेण्ट में पहुँचती हैं। एक अख़बारी तहक़ीक़ के मुताबिक़ सारी दुनिया में ख़वातीन मेम्बराने पार्लियामेण्ट में 70 फ़ीसदी करोड़पति हैं। बक़िया यक़ीनन लखपति होंगी। फिर एक चुभता हुआ सवाल उभर रहा है कि मौजूदा या साबिक़ा ख़वातीन मेम्बराने पार्लियामेण्ट ने औरतों के लिये क्या कारनामा अन्जाम दिया? सूबे की सबसे ताक़तवर शख़सियत वज़ीरे आला की होती है। कई ख़वातीन इस वक़्त चीफ़ मनिस्टर हैं और कुछ रह चुकी हैं। उन्होंने औरतों के हक़ में क्या कारहाए नुमायाँ अन्जाम दिये? एक ज़मीनी हक़ीक़त और सर उभार रही है कि बड़े-बड़े सियासी माफ़िया, सरमायादार, काला धन रखने वाले, अपनी औरतों को इलेक्शन लड़वायेंगे और उनके ज़रिये हुकूमत करेंगे। जैसा कि पंचायती इलेक्शनों में साफ़ सूरते हाल दिखाई दे रही है और बिहार की मिसाल सामने है कि जहाँ बज़ाहिर बीवी की हुकूमत थी लेकिन हुक्म शौहर का चलता था।

उसूली तौर पर तो हम मुवाफ़िक़ हैं कि जब रिज़र्वेशन मिलना है तो फिर मुसलमान औरतों के लिए कोटा मुक़र्रर होना चाहिए, लेकिन इस तल्ख़ हक़ीक़त को कैसे नज़रअन्दाज़ करें कि अब तक जितने भी मुसलमान असेम्बली या पर्लियामेण्ट पहुँचे हैं, पार्टी के वफ़ादार रहे। मुसलमानों के सामने बाबरी मस्जिद शहीद

हो गई, किसी कांग्रेसी मुसलमान के मुँह से उफ़ भी न निकल सकी। दस्तूरे हिन्द की दफ़ा 341 में पास हुआ कि अगर दलित मुसलमान हो जायेगा तो उसकी सारी सहूलतें ख़त्म हो जायेंगी, फिर मज़ीद इज़ाफ़ा हुआ कि बौद्ध, जैन या सिख हो जायेगा तब सहूलतें बाक़ी रहेंगी। इतनी बड़ी नाइन्साफ़ी हुई, मगर किसी पार्टी का कोई मुसलमान सांस भी न ले सका।

ख़वातीन का हलक़-ए-इन्तेख़ाब लाटरी से तै होगा और हर बार इलेक्शन में हलक़-ए-इन्तेख़ाब तबदील हो जायेगा। इसका मतलब है जो इस दफ़ा जिस हलक़े से लड़ रहा है अगली मरतबा किसी दूसरे हलक़े से इलेक्शन लड़ेगा। इस तरह उसे जब दोबारा वोट माँगना नहीं है तो अब कौन अपने हलक़े के लिए काम करायेगा? इस तरह से वोटरों की अहमियत ख़त्म हो जायेगी। इन तमाम ज़मीनी हक़ीक़तों के बाद भी हम यही कहेंगे कि अगर ख़वातीन को रिज़र्वेशन मिल रहा है तो मुस्लिम ख़वातीन का कोटा मुक़र्रर हो, क्योंकि कुछ भी न मिलने से कुछ मिल जाना बेहतर है। मैं फिर दोहराउँगा कि मुस्लिम ख़वातीन जाएं, मगर इस्लामी क़वानीन की पाबन्दी का लेहाज़ करते हुए और अपनी मज़हबी और फितरी ज़िम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 26 मार्च 2010ई०)